



# ज्ञानविद्या

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)

3049-2327(Print)

IIFS Impact Factor-2.25

Vol.-2; Issue-1 (Jan.March) 2025

Page No.- 24-29

©2025 Gyanvidha

www.journal.gyanvidha.com

## डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा

सहायक आचार्य

भाषा विभाग,

क्राइस्ट विश्वविद्यालय

Corresponding Author :

## डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा

सहायक आचार्य

भाषा विभाग,

क्राइस्ट विश्वविद्यालय

## भारतीय नाट्य साहित्य में रंग परंपरा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

**प्रस्तावना :** भारतीय रंग परंपरा का रूप पुरातन है और उतना ही पुरातन भारतीय नाट्य साहित्य की परंपरा है। भारतीय साहित्य के पुरातन रूप में काव्य और दृश्य के दो भेद देखे गए। काव्य को अध्ययन व दृश्य काव्य को रंगमंच पर अभिनीत करके सामाजिको का मनोरंजन व रसानुभूति कराना ही दृश्य काव्य उद्देश्य था। साहित्य और कलाओं के साथ नाटक और रंगमंच की परंपरा भी पाँच हजार वर्ष पुरानी है। रामायण, महाभारत को गाकर सुनाने की परंपरा के संकेत मिलते हैं। नाटक और रंगमंच का संबंध बहुत गहरा और पुराना है। संस्कृत नाट्य व रंगमंच, लोकनाटक व रंगमंच, पारसी, पाश्चात्य, साहित्यिक आधुनिक नाटक व रंगमंच का रूप के प्रवाह की तरह समाज को मनोरंजित व पोषित कर रहा है। भारतीय रंग परंपरा का विकास उसकी समृद्धता को प्रकट करता है। संस्कृत नाटकों की सुदीर्घ परंपरा में रंगमंच को अभिनय करने का मुख्य केंद्र माना गया। वैदिक काल से ही हमें नाटकों के अभिनय योग्य संवादो का उल्लेख मिलता है। संस्कृत रंगमंच के उन्नत रूप कोभी देखा गया। मध्यकालीन युग की परिस्थितियों के बदलाव ने रंगमंच पर भी प्रभाव डाला, लोक रंगमंच का रूप रामलीला, सांग, रासलीला तथा नौटंकी के रूप में विद्यमान रहे। रंगमंच और नाटक को हम अलग-अलग रूप में नहीं देख सकते, यह एक-दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं। और समाज को आनंद व मनोरंजन के दोबारा जोड़ने का प्रयास करते हैं। रंगमंच की उपयोगिता को प्रत्येक नाट्य परंपरा ने अपनाया व पल्लवित-पुष्पित किया। दृश्य के माध्यम से मनोरंजन करने का साधन रंगमंच के माध्यम से पूर्ण हुआ।

**शब्द कुंजिका :** मनोरंजन, पुरातन, रंगमंच, अभिनय, परंपरा, प्रस्तुतिकरण आदि।

**शोध विस्तार :** कला का पहला उद्देश्य मनोरंजन है और उसके बहाने से शिक्षा देना भी जरूरी है- जिस तथ्य और सत्य की तरफ आज से ढाई-तीन हजार वर्ष पहले भरत व अन्य नाट्य आचार्यों ने संकेत किया था। भारतीय रंग परंपरा का रूप बहुत प्राचीन है और यह कहना गलत नहीं होगा कि भारतीय नाट्य साहित्य की परंपरा भी उतनी ही पुरातन है। अभिनय का आधार रंगमंच से ही जुड़ा है। रंगमंच एक सामूहिक गतिविधि में धीरे-धीरे बदलने लगा इस प्रक्रिया में बदलाव भी हुए। नाटक का रंगमंच पर प्रस्तुतिकरण, अभिनय के विभिन्न रूप आदि को भी प्राथमिकता दी गई। देशकाल, परिस्थितियों के अनुसार नाटक और रंगमंच का विकास हुआ। रंग परंपरा का रूप अनेक बदलावों से गुजरता हुआ, समय की धारा में आपको पोषित करने का प्रयास करता रहा जिसका कार्यकलाप संगीतशालाओं और नाट्यशालाओं के समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था।

साहित्य दर्पणकार ने भी “दृश्य तत्राभिनय” कहकर नाटक के आत्मतत्त्व अभिनय को स्पष्टतः रेखांकित कर दिया है संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक को दृश्य काल की संज्ञा दी गई। दृश्यविधा होने के कारण उसका रसास्वादन हजारों व्यक्ति एक साथ कर सकते हैं। डॉ. स्वरूप सावित्री के विचारानुसार “रंगमंच के द्वारा ही देश और जाति के उत्कर्ष की झांकी जनता के समक्ष रखी जा सकती है।”<sup>2</sup>

भारतीय रंगपरंपरा का रूप वैदिक काल में अंकुरित हुआ भरत की रंग परंपरा में पल्लवित-पुष्पित हुआ और संस्कृत नाट्य आचार्यों के संरक्षण में अपनी जड़ों को फैलाने में सक्षम हुआ। रंगपरंपरा का रूप निरंतर बदलावों के साथ नए नए रूपों में साहित्य, समाज और कला को नए आयाम देता आ रहा है।

भरत पूर्व रंग परंपरा

भारत के नाट्य साहित्य में नाटक और रंगमंच का व्यवस्थित रूप दिखाई देता है। यह व्यवस्था भरत

से पूर्व रंग व नाट्य परंपरा में विद्यमान थी। उतना समृद्ध रूप आचार्य भरत को एकाएक प्राप्त नहीं हुआ बल्कि भरत पूर्व भी विकसित नाट्य व रंगपरंपरा थी। भरत पूर्व रंग परंपरा में नटों की सत्ता विद्यमान थी। नाट्य की प्रस्तुति के लिए विदूषक और अभिनेता मौजूद रहते थे प्राचीन रंगमंच का प्रमाणिक इतिहास के अभाव में हम प्राचीन साहित्य में अनेकों स्थानों पर नाट्य प्रस्तुति के संदर्भों को आधार रूप में ग्रहण करते हैं। रामायण के अयोध्या प्रसंग में नटसंघो, संगीत तथा वाद्ययंत्रों की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है। और यह सारा कर्म रंगमंच पर साकार होता है। प्रसिद्ध रंगकर्मी व नाट्य आलोचक महेश आनंद, देवेन्द्र राज अंकुर के शब्दों में “भरत के पहले भी रंगमंच की कई परंपराएँ सक्रिय थीं। अभिनव गुप्त बताते हैं कि सदाशिव, ब्रह्मा और भरत-उन तीनों के नाट्यशास्त्रों की परंपराएँ बहुत पहले से चली आ रही थी।”<sup>3</sup>

पाणिनि ने नटसूत्रों का उल्लेख किया है। नया पतंजलि में प्रत्यक्ष अभिनय का वर्णन किया गया है। यह सभी रंगमण्डप पर अभिनीत किया जाता था। अभिनय की प्रस्तुति के लिए उचित प्रबंध की व्यवस्था की जाती थी। भरत पूर्व नाट्य साहित्यके लिए रंगशालाओं का उचित प्रबंध था।

**भरत मुनि और रंग परंपरा :** भारतीय रंग परंपरा का व्यवस्थित रूप हमें भरत के नाट्य साहित्य में मिलता है जिसमें भरत मुनि ने रंग संकेत भी दिए हैं और रंगमंच की उपयोगिता को भी स्वीकार किया है। भरतमुनि नाट्य शास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने नाटक की उत्पत्ति का आधार दैवी माना है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि सत्ययुग के समाप्त हो जाने पर तथा त्रेता युग के आरम्भ होने पर इंद्र, वरुण आदि देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे आनन्द प्राप्ति का कोई ऐसा साधन दें जो दृश्य भी हो, श्रव्य भी हो और जिससे समाज के चारों वर्ण समान रूप से आनन्द ले सकें।<sup>4</sup>

नाटक के साथ भरत ने रंगमंच की भी परिकल्पना की नाट्यशास्त्र में उनकी पहली नाट्य प्रस्तुति अमृतमंथन थी जिसमें खुला मंच था। दानवों के उपद्रव ने रंग-प्रस्तुति में विघ्न-बाधा पैदा की जिसके परिणाम स्वरूप भरत ने बंद प्रेक्षागृह के निर्माण की योजना बनाई। जिसे नाट्य मण्डप कहा गया और इन नाट्य मण्डपों का आकार, नाप भी अलग-अलग होता था।

नेपथ्य ग्रह की उपयोगिता को व्यक्त करते हुए भरत भूमि ने अपने विचार व्यक्त किए कि नेपथ्य ग्रह का निर्माण अभिनेताओं के उपयोग के लिया किया जाता है और यह रंगभूमि का अनिवार्य तत्व है रंगशाला का निर्माण नाटकके लिए किया जाता था तथा इस बात पर ध्यान खबर जाता था कि स्तर क ढंग से सुनाई दे सके रंगशाला का विस्तृत वर्णन करते हुए भरत ने लिखा है कि रंगशाला के दो भाग होते हैं पहला रंग भूमि और दूसरा प्रेक्षास्थल रंगभूमि के दो भागों में विभाजित किया जाता है पहला रंगपीठ और दूसरा रंगशीप होता है। के पीछे जो परदा लगा हुआ होता है वह पृष्ठभूमि का काम करता है और फिर उसी परदे के पीछे नेपथ्य होता है। प्रस्तावना की योजना रंगपीठ पर होती है जिसमें रंगसज्जा का विशेष ध्यान रखा जाता था उसे सौन्दर्यपूर्ण और आकर्षक बनाया जाता था ताकि वह रंगमंच पर प्रभाव उत्पन्न कर सके। भरत के अनुसार रंगस्थल इतना विशाल नहीं होना चाहिए कि रंगमंच पर होने वाला अभिनय सुविधापूर्वक न देखा जा सके। भरत ने रंगमंच के वास्तुपक्ष का भी विस्तृत विवेचन दिया है। इस प्रकार अनेक रंग संकेत भरत के नाट्यशास्त्र में हमें प्राप्त हो जाएंगे जिनसे पता चलता है कि भरत मुनि के समय में भी रंगमंच की समृद्ध और व्यवस्थित परंपरा थी जिसका आधार, उन्होंने पौराणिक रेश परंपरा से प्राप्त किया था लेकिन नाटक का सीधा संबंध हर समय रंगमंच से ही जुड़ा पाया गया है।

डॉ. नीलिमा दुबे ने भी भरत के नाट्यशास्त्र संबंधी विचारों की व्याख्या द्वारा स्पष्ट किया है कि भरत मुनि की रंगमंच की रंगपरंपरा में नेपथ्य का विधान भी था भरत के नाट्यशास्त्र के आधार पर रंगमंच की रूपरेखा व परिकल्पना का वर्णन किया है जैसे तो भरत ने तीन प्रकार के नाट्यगृहों का वर्णन किया है। निकृष्ट, चतुरस्र, और त्रयष्ट।<sup>5</sup> इन तीनों के नाट्य ग्रहों में प्रत्येक के ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ तीन भेद हैं प्रत्येक नाट्यशाला की अपनी पृथक उपयोगिता का भी उल्लेख भरत ने अपने ग्रंथ में किया। आचार्य भरत व उनके समकालीन नाट्य आचार्यों ने रंगमंच व नाट्य कला को व्यवस्थित रूप में समाज के सभी वर्गों के लिए प्रस्तुत किया।

**लोक रंग परंपरा** : लोकनाट्य परंपरा व रंग परंपरा के संकेत वैदिक काल से ही मिलते हैं लेकिन अपनी पूर्णता व विकास लोक रंगमंच को मध्ययुग में मिला। संस्कृत रंग परंपरा का मध्य युग में बहिष्कार किया गया भक्ति परंपरा में ईश्वर की लीलाओं को जनता के सामने लाने के लिए रंगमंच की आवश्यकता व अनुभव को गई। लोक रंगमंच के दो मुख्य रूप 'रामलीला और रासलीला' हैं। "रामलीला का प्रथम आयोजन वल्लाचार्य के द्वारा माना जाता है। रासलीला का श्री गणेश स्वयं तुलसीदास जी ने किया था।"<sup>6</sup>

यह लीलाएँ तीन चार सौ वर्षों तक जीवित रही। लोक नाटकों के प्रस्तुतिकरण या मंचन में लोक नृत्य, लोक संगीत का योग महत्त्वपूर्ण था। वाद्ययंत्रों में ढोल नगाड़ा, तुरही, भेरी आदि का प्रयोग किया जाता था। लोक रंग परंपरा में खुला रंगमंच होता था। नाट्यशास्त्र में सूत्रधार का वर्णन होता था वहीं लोक नाटकों में सूत्रधार के स्थान पर भरवौलिया का वर्णन मिलता है। जो रंगमंच का पर अपनी बुद्धिमत्ता, समझदारी द्वारा दर्शकों में हास्य उत्पन्न करता था तथा प्रेक्षकों को रंगमंच से जोड़े रखता था। लोक रंगमंच नियमों और परंपराओं से बंधा हुआ नहीं था। खुला

मंच, स्वछंद अभिनय व प्रदर्शन व दर्शकों के मन तक पहुँचना ही लोक रंगमंच की पहचान थी। खुले आकाश के नीचे एक समूह बनाकर अभिनय कर लिया जाता था। दर्शक और रंगकर्मी के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं होती। मंच बीचोबीच होता है जिसके चारों तरफ दर्शक घेरा डालकर खड़े रहते हैं। रामलीला, रासलीला का मंचन खुले रंगमंच पर ही किया जाता था। लोक रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था, रूपसज्जा, वस्त्रविधान आदि का महत्त्व था किन्तु इनकी पूर्ति मशाल जलाकर, सामान्य वस्त्रसज्जा व रूपसज्जा द्वारा पूरी कर ली जाती थी। लोकरंग परंपरा में रंगमंच पर अभिनय करते समय पुरुष ही स्त्री- पात्रों की भूमिका कर लेते थे।

रंगमंच की उपयोगिता को लोक रंग परंपरा में विशेष रूप से देखा जा सकता है। लोक रंगमंच स्वाभाविक सादगीपूर्ण और कृत्रिमता से कोसों दूर रहा। लोकरंगमंच को ईश्वर तक पहुँचने का मंच माना गया। लक्ष्मीनारायण भरद्वाज ने अपनी पुस्तक रंगमंच “लोकधर्मी नाट्यधर्मी में अपने विचार व्यक्त किए हैं। लोकधर्मी नाट्यों में लोक का शुद्ध और स्वाभाविक अनुकरण होता है। उसमें विभिन्न भावों का संकेत करने वाली वाचिक, आंगिक, सात्विक और आहार्य-विधियों का समावेश नहीं होता।”<sup>7</sup> लोक नाट्य परंपरा और रंग परंपरा का रूप भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग रूप में प्रचलित है। लेकिन इसकी आत्मा व उद्देश्य सादगी से पूर्ण विशेष ही रहा।

**आधुनिक हिंदी रंगमंच और नाटक :** नाटक और रंगमंच का संबंध पुरातन काल से चला आ रहा है। नाट्य परंपरा से संस्कृत नाट्य तथा लोकनाटकों से पारसी नाटकों व रंगमंच की दौर एक समृद्ध परंपरा का काल-क्रम देखा जा सकता है। इस निरंतर प्रवाह में नाटक और रंगमंच का रूप बदलता गया किन्तु उसमें छिपी अभिव्यक्ति संवेदना, संप्रेषण, साधारणीकरण का भाव समान रूप से विद्यमान है

हिंदी नाटकों ने उन्नीसवीं शती तक अपना एक निश्चित रूप प्राप्त कर लिया था। पारसी रंगमंच के पतन ने साहित्यिक रंगमंच को स्थापित होने आधार भूमि प्रदान की। “भारतेन्दु और उनके साथियों ने इस पारसी रंगमंच से विरक्त हो कर इनकी प्रतिक्रिया में साहित्यिक रंगमंच की स्थापना की। हिंदी के रूप में खड़ी बोली का उपयोग हुआ। हिंदी रंगमंच व नाटक का उद्देश्य मनोरंजन से एक कदम आगे बढ़कर उद्देश्य और शिक्षा देना, प्रश्न उठाना, वर्तमान परिस्थितियों को विवेकपूर्ण मनः स्थिति से समझना भी था।”<sup>8</sup> साहित्यिक रंगमंच में खेले जाने वाले नाटकों में देश प्रेम, संस्कृति आदि की ओर अधिक ध्यान रखा जाता था और अधिकतर पौराणिक नाटक ही इस रंगमंच में अभिनीत होते थे, आधुनिक युग का आरंभ नाटक की विद्या से ही आरंभ होता है। आधुनिक हिंदी नाटक नहुष गिरधर गोपाल द्वारा रचित पहला हिंदी नाटक माना गया तो कुछ रीवा के महाराजा विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा रचित नाटक आनंद रघुनन्दन को हिंदी का प्रथम नाटक मानते हैं। आधुनिक काल आगमन के साथ ही हिन्दी नाटकों में साहित्यिक चेतना का उदय हुआ।

**भारतेन्दु के नाटक और रंगमंच :** हिंदी नाट्य साहित्य में निरंतर विकास की प्रक्रिया चल रही है। नाटककार अपने काल की रंग परंपराओं व नाट्य बोलियों से अछूता नहीं रह सकता वह उससे प्रभावित होकर ही अपनी नाट्य रचनाओं को आधार प्रदान करता है। प्राचीनकाल से ही नाटककारों ने अपने काल के रंगमंच व नाटक को विकसित करने में भरपूर योगदान दिए हैं भरत मुनि, भास आदि अनेक नाटककारों ने अपने मौलिक प्रयोगों द्वारा नाटक व रंग परंपरा को समृद्ध किया व उसे आगे बढ़ाया।

आधुनिक हिंदी नाटक व रंगमंच पर केवल पाश्चात्य रंग परंपरा व नाट्य शैलियों का प्रभाव ही देखा गया है यह कहना असंगत होगा कि पाश्चात्य

नाट्य साहित्य व रंग परंपराओं से प्रभावित होने के साथ-साथ आधुनिक नाटककारों ने पारंपरिक नाटकशैली, लोक नाट्य व पारसी रंगमंच के मिले-जुले रूप को नया आधार प्रदान किया उन्होंने पुरानी नाट्य-रूढ़ियों को परिवर्तित कर नवीन प्रयोगों द्वारा नाट्य और रंग परंपरा दोनों को नया आयाम प्रदान किया और हिंदी नाटक व रंगमंच को नयी दिशा प्रदान की "आधुनिक हिंदी नाटककारों में भारतेन्दु का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। उनके समय में पारसी रंगमंच सक्रिय था लेकिन भारतेन्दु ने पारसी रंगमंच के विरुद्ध नयी नाट्य परंपराओं की खोज की उन्होंने संस्कृत व नाट्य शास्त्र की परंपराओं में परिवर्तन करके नवीन नाट्य परंपरा का उदय किया। उनके नाटक सत्य हरिश्चंद्र, चंद्रावली, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।"<sup>9</sup> आदि नाटकों में नवीनता के संकेत देखे जा सकते हैं।

आधुनिक युग के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिन्दी नाटक व नाटककार और रंगमंच के नये रिश्ते की तलाश की और सार्थक एवं गम्भीर रंगकर्म की आधारशिला रखी। आधुनिक रंगकर्म व नाटककार जयदेव तनेजा के विचार में "निःसंदेह पारसी रंगमंच सम्पृक्त जिन साहित्यिक एवं कलात्मक नाटकों से नाट्य लेखन तथा स्वयं उनके अभिनय और व्यावहारिक रंगकर्म का जो आदर्श सामने रखा वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणादायक था।"<sup>10</sup> भारतेन्दु ने प्राचीन परंपरा और संस्कृत की नाट्य शिला के आधार पर अपने नाटकों की रचना की।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी नाटक व रंगमंच में अनेक उत्साहवर्द्धक विस्तार रंग चेतना में नवीनता तथा बदलते भावबोध के कारण जिन नाटकों का निर्माण हो रहा था। उनमें 'व्यक्ति' नाटक की परिधि में आ गया था और नाटक का व्यक्ति संशय, घुटन, आडंबर, अनैतिकता आदि मनोवैज्ञानिक आयामों को उल्लेखित कर रहा था। आगे चलकर नाटकों में अस्तित्वादी चिंतन और विसंगति बोध का प्राधान्य

उत्तरोत्तर बढ़ता गया। पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव भी हिंदी नाट्य पर दिखाई देने लगा। एब्सर्ड नाट्य परंपरा व विसंगत नाटकों का चलन भी हिंदी नाटकों में दिखाई देने लगा क्योंकि सत्तर के दशक बाद नाटककारों ने परिवेश की भयावहता और भ्रष्ट आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था को अपना नाट्य-विषय बनाया और उस समय के नाटक व नाटककारों पर पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य परंपरा का सहज प्रभाव दिखाई देता है लेकिन हिंदी नाटककारों ने जहाँ पाश्चात्य प्रभावों को ग्रहण किया वहीं अपने पारंपरिक नाट्य संस्कारों व रंग परंपराओं को जीवित रखा आधुनिक हिंदी नाटककारों ने नाट्य साहित्य को नवीन दिशा दी लेकिन रंगमंचीय दृष्टिकोण को भी नाटक का आधार बनाया। रंग स्थिति को दृष्टि में रखकर नाटकों की रचना की और हिंदी रंग परंपरा को पुष्ट किया। मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, धर्मवीर भारती, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, शेकर शेष, भीष्म साहनी, मणिमधुकर, असवार वजाहत, मीराकांत आदि नाटककारों पर अपने समकालीन हिंदी नाट्य व नाटककारों का सहज प्रभाव पड़ा, वहीं आधुनिक हिंदी नाटक के समांतर प्रादेशिक भाषाओं के नाटक भी प्रचलित हो रहे थे।

**आधुनिक हिंदी नाटकों की रंगचेतना और रंगमंच :** इस प्रभाव से आधुनिक हिंदी नाटककार, में प्रभावित हुए और उन्होंने प्रादेशिक भाषाओं में लिखे जाने वाले नाटकों व रंगपरंपराओं के प्रभावों को भी ग्रहण किया क्योंकि तब प्रादेशिक नाटक व हिंदी नाटक एक दूसरे के प्रभावों से अछूते नहीं थे क्योंकि प्रादेशिक भाषाओं में लिखे जाने वाले नाटक भी सारे देश में विख्यात और लोकप्रिय हो रहे थे उन्होंने भी अपना अस्तित्व तैयार कर लिया था।

आधुनिक हिंदी नाटककारों में मोहन राकेश का महत्त्व सर्वोपरि है क्योंकि उन्होंने नाट्य साहित्य को जो आधुनिक संवेदना और रंग शिला प्रदान किया

आगे चलकर वह अन्य नाटककारों के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। मोहन राकेश ने अपने नाटको द्वारा नवीन रंगचेतना, भावभूमि व शिल्प प्रदान किया। लहरों के राजहंस, आधे-अधूरे, आषाढ़ का एक दिन आदि नाटकों में कथ्य की विविधता होते हुए भी भाव, रंग व शिल्प का आधुनिक रूप ही दिखाई देता है।

### सन्दर्भ सूची :

1. आचार्य खिनाथ (अनुश्री शालिग्राम शास्त्री), साहित्यदर्पण, पृष्ठ-170.
2. डॉ. स्वरूप, सावित्री, नव्य हिंदी नाटक, पृष्ठ-289.
3. महेश आनंद, देवेन्द्र राज अंकुर, रंगमंच का सिद्धांत, पृष्ठ सं-272.
4. भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय, पृष्ठ संख्या - 112.
5. रंगमंचीयता की परिप्रेक्ष्य काव्य नाटक, डॉ. नीलिमा दुबे, पृष्ठ-20.
6. डॉ. सावित्री स्वरूप, नव्य हिंदी नाटक, पृष्ठ सं.- 292.
7. डॉ. लक्ष्मी नारायण भरद्वाज, रंगमंच लोकधर्मी नाट्यधर्मी पृष्ठ संख्या-120.

8. डॉ. सावित्री स्वरूप, नव्य हिन्दी नाटक पृष्ठ संख्या-296.
9. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी, आधुनिक हिंदी हिंदी नाटकों की प्रयोग धर्मिता पृष्ठ संख्या-33.
10. जयदेव तनेजा, नयी रंग चेतना और हिंदी नाटककार, पृष्ठ संख्य -12.

### संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी, आधुनिक हिंदी हिंदी नाटकों की प्रयोग धर्मिता
2. जयदेव तनेजा, नयी रंग चेतना और हिंदी नाटककार
3. डॉ. सावित्री स्वरूप, नव्य हिन्दी नाटक
4. आचार्य खिनाथ (अनुश्री शालिग्राम शास्त्री) साहित्यदर्पण
5. डॉ. लक्ष्मी नारायण भरद्वाज, रंगमंच लोकधर्मी नाट्यधर्मी